



2 छ
११

में को हूँ दे और निकालें

ब्रह्मचर्यं गोव संस्थान
प्राप्ति कुञ्ज, हरिद्वार



युग-निर्माण-योजना-मथुरा

श्रीराम शर्मा आचार्य

: BOOK MADE AVAILABLE FOR DIGITIZATION BY :

BRAHMVARCHAS SHODH SANSTHAN

SHANTIKUNJ, HARIDWAR, INDIA

: OUR MAIN CENTERS :

Shantikunj, Haridwar,
Uttaranchal, India – 249411
Phone no : 91-1334- 260602,
Website : www.awgp.org
E-mail : shantikunj@awgp.org

Gayatri Tapobhumi,
Mathura, U.P., India – 281003
Phone no : 91-0565-2530128,
Website : www.awgp.org
E-mail : yugnirman@awgp.org



: BOOK DIGITIZED BY :

Vicharkranti Pustakalaya, Thana-Faliya, Dindoligam, Surat-394210, Gujarat, India

E-mail: vicharkranti.awgp@gmail.com | Website : www.vicharkrantibooks.org

अपने दोषों को ढूँढ़ें और निकालें



आत्मघात न करें इसी में आपका भला है

मनुष्य का जीवन श्रेष्ठ तथा सामर्थ्यवान् है इसका अनुमान सम्भवतः अन्य जीव-जन्तुओं को अधिक होगा। शरीर और बुद्धि की शक्तियों का विस्तार करके कितने विचित्र अनुसंधान किये हैं उसने, कि सूर्य, चन्द्रमा भी उसके तीखे प्रहारों से भयभीत हो रहे हैं। विचार-विनिमय, साहित्य, सङ्गीत, आहार-विहार में कितनी ही विशेषतायें उसे मिली हैं, इनसे वह परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ पुत्र कहलाने का निःसन्देह अधिकारी है।

किन्तु विचार करके देखते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य का जीवन अन्य जीव-जन्तुओं की अपेक्षा भी अधिक गया बीता है। आचार-विचार वर्तव्य-व्यवहार, व्यवसाय, खान-पान और रहन-सहन में उसने इतने दुष्टतापूर्ण कृत्यों का समावेश कर लिया है कि वह स्वयं दीन-हीन, रोगी, कुरूप अशक्त, अभाव-ग्रस्त तो है ही दूसरे जीवों को भी आतंकित कर रखा है। दुःख और पतन का कारण मनुष्य स्वयं है अपने साथ दुर्व्यवहार स्वयं मनुष्य ने ही किया है। आत्म-घात का दोषी वह स्वयं ही है। इसके लिये न दैव दोषी है न परिस्थितियाँ। अपना शत्रु या मित्र मनुष्य स्वयं है, इसका उत्तरदायित्व किसी दूसरे पर नहीं है।

संसार में दो तरह के व्यक्ति होते हैं। (१) सदाचारी (२) दुराचारी। सद्व्यवहारशील पुरुष वह होते हैं जो सबकी भलाई में अपनी भलाई देखते हैं। अपने शरीर तथा मन की शक्तियों को विकसित करके दूसरों को सुख पहुँचाते हैं। परोपकार की इस भावना के कारण वे स्वयं भी सुखों से ओत-प्रोत रहते हैं, अपने पास-पड़ोसियों को भी सन्तुष्ट रखते हैं। किन्तु दुर्जन अपने अभद्र



व्यवहार, अश्लील आचरण और अत्याचार करते हुये दूसरों को पीड़ा पहुंचाते रहते हैं। दुर्व्यवहार का अन्तिम परिणाम दुःख है। दूसरों के साथ दुष्टता करके अपने हितों का सर्वनाश पहले से ही कर लेते हैं।

अपने हित की बात होती है तो सभी सुख और शान्ति चाहते हैं किन्तु व्यवहार में यह दूसरों के साथ भी ऐसा ही चाहें, तो हम मानेंगे कि वह नेक हैं और उसको कामनायें सही हैं। दुर्व्यवहार का कुफल दुःख और बेचैनी है। फिर वह चाहे अपने साथ ही या दूसरे के साथ दुःख ही होगा। भलाई की बात यह है कि आप जो औरों से अपने जिये चाहते हैं वैसा ही वर्तव्य दूसरों के साथ भी करें।

बुद्धि और विचार की शक्ति मनुष्य में इतर प्राणियों की अपेक्षा अधिक है इसलिये वह अपनी भलाई का विचार कर सकता है। बुद्धि के सदुपयोग या दुरुपयोग से ही वह सुख-शान्ति या क्लेश और कलह की परिस्थितियाँ तैयार करता है। इसका दोषारोपण किसी दूसरे पर करना मनुष्य की जड़ता का ही चिह्न समझा जायगा। मनुष्य अपने कर्मों का फल आप भोगता है इसके लिये किसी दूसरे को अपराधी नहीं कह सकते।

अपनी शारीरिक त्रुटियों पर विचार कीजिए। कितनी गन्दी आदतों का समावेश हो गया है आज के जन-जीवन में। पान, बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू मिर्च-मसाले, मिठाई, खटाई, अंडे, मांस आदि कितने अभक्ष्य पदार्थों का सेवन लोग करते हैं। लोगों के स्वास्थ्य खराब हों तो इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है। रोज नई-नई बीमारियाँ उठनी आ रही हैं तो इसका दोषी और कौन होगा? दूध, घी जैसी जीवनोपयोगी चीजों में कितनी मिलावट होने लगी है। शक्ति और सार-तत्त्व नष्ट हो गये हैं पर कटोरियाँ सजाने का फैशने बढ़ गया है। एक ओर खाद्य-पदार्थों में दूषित तत्वों का प्रवेश और दूसरी ओर बढ़ती हुई असंयम की प्रवृत्ति। दोनों ने मिलकर स्वास्थ्य की ऐसी बरबादी मचाई है कि लोगों में चलने फिरने जितनी ही शक्ति शेष बची है। मौसम के हलके परिवर्तन को भी सहन करने की शक्ति तक नहीं रही मनुष्य के शरीरों में। शरीर के प्रति आत्म-घात के इतने भयानक परिणाम मनुष्य के नाम पर



कलङ्क ही लगा रहे हैं।

संसार का सबसे घनी देश अमेरिका, जहाँ धन और साधनों की किसी तरह को कमी नहीं है, उसे धन-सम्पन्न नहीं रोग सम्पन्न कहना अधिक उपयुक्त होगा। न्यूयार्क के 'जेरिआट्रिओज क्लिनिक'—मेट्रोपालिटन अस्पताल के डा० कोड़ा मार्टिन के कथनानुसार रजिस्टर पर अङ्कित जीर्ण रोगियों की संख्या १,८८,६५,५३४ है। सन् १९५४ की गणना के अनुसार कैंसर से मरने वाले अमरीकियों की संख्या प्रतिवर्ष २५००००, हृदय रोग से ८९७००० है। ७०००००० से अधिक व्यक्ति संधि-प्रदाह तथा अन्य वात रोगों से ग्रसित हैं। २३१ व्यक्तियों में से १० व्यक्ति उपदंश या प्रमेह के रोगी, ६० प्रतिशत लोगों की आँखें खराब होना निःसन्देह अमेरिका के लिये कलङ्क की बात है। जिस देश में प्रतिवर्ष १०००००००० डॉलर निद्रा लाने वाली औषधियों में खर्च होते हों वह देश सुखी होगा ऐसी कल्पना भी नहीं की जा सकती। यह अवस्था सर्व-सम्पन्न देश अमेरिका की है तो शेष दुनियाँ का अनुमान लगाया जा सकता है।

मनुष्य की इन परेशानियों का कारण केवल आहार सम्बन्धी दोष नहीं है। मनुष्य का नैतिक स्तर गिर जाना सबसे बड़ा कारण है। अश्लील साहित्य, सिनेमा के गन्दे गाने और भ्रष्ट चित्रों से कामोत्तेजना के कारण मनुष्य का शरीर तो बरबाद होता ही है, मानसिक संस्थान भी दूषित होता है जिसके फलस्वरूप सारा जीवन दुःख, शोक और रोगों के रूप में दिखाई देता है। लोगों की ज्ञान-शौकत, तड़क-भड़क, शृङ्गार प्रियता के कारण चारित्रिक पतन भी अपनी सीमा पर पहुँच गया है। आर्थिक व्यवस्था भी लड़खड़ा रही है। मनुष्य को किसी तरफ चैन या सन्तोष नहीं मिल रहा, बेचारा विक्षिप्त-सा होकर इधर-उधर भटक रहा है।

भ्रष्टाचार के कारण आज सभी दुःखी हैं फिर भी नैतिक साहस किसी में नहीं आता। सभी स्वार्थ-साधनों में लीन हैं। स्वयं कुछ न देकर, दूसरों से एँठ लेने की नीति के कारण न तो कहीं सहयोग रह गया है और न सहानुभूति। मुसीबतों में सच्चे हृदय से सहानुभूति दिखाने वाले भी नहीं रहे। मान-



वृत्ता का इतना अधःपतन शायद ही किसी युग में हुआ हो। उसी अनुपात में लोगों का कष्ट और पीड़ाओं से परेशान होना भी स्वाभाविक ही है।

सद्विचारों की अवहेलना, धन का लालच, आपसी दुर्व्यवहार और नैतिक पतन के कारण मनुष्यों के शरीर और मन पर दूषित असर पड़ा है। चिन्ता, भय, विषाद, रोग, शोक, कष्ट और निराशा के दुर्विचार मनुष्य का पीछा नहीं छोड़ते इसी कारण मनुष्य निरन्तर अस्त-व्यस्त और अशान्त रहता है। दुर्व्यवहार की बड़ी दूषित प्रतिक्रिया छाई है इस संसार में। यहाँ रहते हुए मनुष्य का दम घुट रहा हो तो इसका अपराधी मनुष्य के अतिरिक्त भला और कौन होगा ?

इन भौतिक जंजालों में मनुष्य इस तरह ग्रसित हो गया है कि उसे जीवन का सात्विक लक्ष्य प्राप्त करने की कभी सुध भी नहीं आती। विज्ञानवाद के फेर में पड़कर मनुष्य आत्मा की सत्ता से ही इनकार कर बैठा है। भोग-परक मानवीय प्रवृत्तियाँ तो बढ़ रही हैं किन्तु शील और सदाचार की तरफ देखने को भी लोगों को फुरसत नहीं मिल रही। दूसरों को कष्ट पहुँचा कर मनमाने ढङ्ग से सुख लूटने की कुत्सित कामनाओं के कारण लोक-जीवन के सारे सुख लगभग नष्ट हो चुके हैं। अब मनुष्य अपना ही विनाश करने पर तुला हुआ है। यह समस्याएँ ऐसी ही बनी रहीं तो सर्वनाश हो जाना सम्भव ही है।

अपने सुखों को बरबाद कर डालने की जिम्मेदारी मनुष्य पर ही है। आत्म-कल्याण की आवश्यकता और उसके लिए उचित प्रयत्नों की बात भुला कर मनुष्य असुरता की ओर बढ़ रहा है। इसी से वह दुःखी है। छुटकारे का उपाय एक ही है कि वह इन पतनोन्मुख दुष्प्रवृत्तियों का परित्याग करे और सदाचारी जीवन जीने में सुख और सन्तोष अनुभव करे।

वह कार्य हमें स्वयं ही करना होगा। अपनी परिस्थितियों का निर्माता मनुष्य स्वयं है। सुख और समुन्नति के लिये आत्म-घातिनी दुष्प्रवृत्तियों से दूर रहने और सत्य, न्याय, समता आदि सद्गुणों का प्रसार उसे ही करना



अपने दोषों का ।

पड़ेगा । हमारी भलाई भी इसी में है । सदावस्था को अपनाकर ही हम सुखी रह सकते हैं ।

शांति

अपने दोषों को भी देखा कीजिये

✓ आपके प्रति यदि किसी का व्यवहार अनुचित प्रतीत होता है तो यह मानने के पहले कि सारा दोष उसी का है आप अपने पर भी विचार कर लिया करें । दूसरों पर दोषारोपण करने का आधा कारण तो स्वयमेव समाप्त हो जाता है । कई बार ऐसा भी होता है कि किसी की छोटी-सी भूल या अस्व-व्यस्तता पर आप मुस्करा देते हैं या व्यंगपूर्वक कुछ उपहास कर देते हैं । आपकी इस क्रिया से सामने वाले व्यक्ति के स्वाभिमान पर चोट लगना स्वाभाविक है । अपनी प्रशंसा सभी को प्यारी लगती है, पर व्यंग या आलोचना हर किसी की अप्रिय है । कोई नहीं चाहता कि अकारण लोग उसका उपहास करें, मजाक उड़ायें । फिर आपके अप्रिय व्यवहार के कारण यदि औरों से अपशब्द, कटुता या निरस्कर मिलता है तो उस अकेले का ही दोष नहीं । इसमें अपराधी आप भी हैं । आपने ही प्रारम्भ में इस स्थिति को जन्म दिया है । इसलिये दूसरों से प्रतिकार की भावना बनाने के पूर्व यदि अपना भी दोष-दर्शन कर लिया करें तो अकारण उत्पन्न होने वाले झगड़े जो कि प्रायः इसी से अधिक होते हैं, क्यों हो !

✓ अगर किसी को अपनी बात मनवानी ही है अथवा यह पूर्ण रूप से जान लिया गया है कि अमुक कार्य में इस व्यक्ति का अहित है, आप उसे छुड़ाना चाहते हैं, तो भी अशिष्ट या कटु-व्यवहार का आश्रय लेना ठीक नहीं । यदि वह व्यक्ति आपके तर्क या सिद्धान्त को नहीं मानता तो आप उसे अयोग्य मूर्ख या दुष्ट समझने लगते हैं और अनजाने ही ऐसा कुछ कह या कर बैठते हैं जो उसे बुरा लगे । इसके दूसरे के आत्माभिमान को चोट लगती है, जिसकी प्रतिक्रिया भी कटु होती है । उससे कलह बढ़ने की ही सम्भावना अधिक रहेगी । ✓

उसी बात को स्नेह और आत्मीयता पूर्वक कहें तो आपके सम्बन्ध भी



बन्धे बने रहते हैं और आपकी बात भी मान ली जाती है। ऐसे समय किन्हीं व्यक्तियों या घटनाओं के उदाहरण प्रस्तुत करें तो प्रभाव और भी परिपुष्ट होगा किन्तु यह ध्यान बना रहे कि आपकी बात पूर्ण आत्मीयता के साथ कही जा रही है। इतने पर भी शत प्रतिशत यह आशा नहीं करनी चाहिये कि वह आपकी बात मान ही ले, क्योंकि उसकी अपनी धारणा भी तो किसी आधार पर टिकी होती है। उसके सिद्धान्त में बल है अथवा नहीं, यह अलग बात है। बात सिर्फ मान्यता की है। ऐसे समय उसे दुष्ट मानने की अपेक्षा यह देखना अधिक श्रेयस्कर है कि उसके ज्ञान या अनुभव में कमी है, या उसे प्रभावित करवाने की क्षमता का आप में अभाव है। इस प्रकार के विचार से आप उत्तेजित भी नहीं होते, क्रोध भी नहीं आता और प्रतिशोध या बदला लेने की हानिकारक भावना भी नहीं बनती। आपके सम्बन्ध भी ज्यों के त्यों बने रहते हैं। उनमें भी किसी प्रकार का तनाव पैदा नहीं होता।

✓ मनुष्य को सम्मान उसकी योग्यता-अयोग्यता, गुफ्ता कार्यक्षमता और उपयोगिता के आधार पर मिलना है। पात्रत्व के अभाव में आपको सम्मान मिलने की आशा नहीं बाँधनी चाहिए। अहङ्कारवश कई व्यक्ति पात्रता न होते हुये भी दूसरों से भारी सम्मान की आशा करते रहते हैं और वह जब नहीं मिलता है तो दूसरों को दोष देने लगते हैं। उन्हें अपना विरोधी शत्रु या ईर्ष्यालु मानने लगते हैं। कई व्यक्ति इसी अहङ्कारवश अनावश्यक शेखीखोरी करते रहते हैं। और जो उनसे सहमत नहीं होता उससे क्षुब्ध होते हैं। ऐसी झूठी शेखी जताने से आपका सम्मान गिर जायेगा और दूसरों से प्रतिष्ठा पाने की आपने जो आशा की थी उससे भी वंचित बने रहेंगे। ✓

✓ यह भी देखिये कि ऐसी ही अपेक्षा दूसरे भी आपसे रखते हैं। जिस प्रकार आपको प्रशंसा प्रिय है, वैसे ही दूसरों को भी। आप जैसे दूसरों से सहयोग और सहानुभूति चाहते हैं वैसे ही आपके मित्र-बन्धु, पड़ोसी भी आपसे ऐसी ही अपेक्षा रखते हैं। स्वयं औरों से सेवा लेकर दूसरों को अगुँठा दिखाने का संकीर्ण दृष्टिकोण अपनाने से आप औरों की नजरों में गिर जायेंगे। यदि चाहते हैं कि आड़े वक्त आपकी कोई मदद करे तो औरों के दुःख में हाथ



बटाइये, और सहानुभूति प्रकट कीजिये, औरों के साथ उदारतापूर्वक व्यवहार करने से ही उनका हृदय जीत सकते हैं। सहयोग और सहानुभूति प्राप्त कर सकते हैं। इस संसार में सर्वत्र क्रिया की प्रतिक्रिया चलती है। “दो तो मिलेगा” की ही नीति सच्ची और व्यावहारिक है। —

कई बार ऐसा होता है कि कोई बात आप भूल जाते हैं, कोई बात आपकी स्मरणशक्ति से उतर जाती है। इसका दण्ड आप अपने घर वालों बच्चों और प्रियजनों को देने लगते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि आप यह मान बैठते हैं कि मैंने बच्चे को अमुक वस्तु लाने के लिए कह दिया था; वस्तुतः आपने कहा नहीं था। कभी-कभी अस्पष्ट या अधूरे आदेशों को दूसरा ठीक प्रकार समझ नहीं पाता और आप यह समझ बैठते हैं कि हमारी अवज्ञा की गई है। जिसे आदेश दिया था वह अपनी असमर्थता प्रकट करता है तो इस आप अपनी अवज्ञा मान कर दण्ड देते हैं, झिड़कते और भला-बुरा कहते हैं। भूल जाने की बात मानवोद्य है। आपकी ही तरह दूसरा भी मानसिक कमजोरी के कारण भूल सकता है। आप यही मान लें कि भूल हमसे या दूसरों से हो सकती है तो क्यों किसी को दंड देंगे, क्यों दुर्भाव पैदा करेंगे? मानसिक सन्तुलन बनाये रखने के लिये इस प्रकार करना ही अच्छा होता है।

जल्दबाजी करने से भी गलती हो जाती है। इसलिये कोई समस्या आये उस पर पूर्णरूप से विचार कर लेने के बाद ही कोई कदम उठाना अच्छा होता है। आप ढूँढ़ें तो हर परेशानी का आधा कारण तो अपने में ही मिल सकता है। यहाँ यह नहीं कहा जा रहा कि गलती हर बार आप ही करते हैं, अनुचित रूप से किसी को अकारण दण्ड न मिले, इसलिए प्रत्येक अव्यवस्था में अपनी भूल ढूँढ़नी चाहिए। यह सम्भव है कि दूसरा व्यक्ति किसी भूल, भ्रम या परिस्थितिवश आपकी इच्छा पूरी न कर सका हो ऐसी दशा में उस पर दुर्भाव का आरोपण कर बैठना अध्याय ही कहा जायगा। /किसी के प्रति अन्यायपूर्ण धारणा बना लेने से बुरी प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है। इसलिए किसी पर दोषारोपण करने के पूर्व शान्त चित्त से यह देखना चाहिये कि



आपकी भूल या दूसरे की विवशता के कारण ही तो ऐसा अप्रिय प्रसङ्ग नहीं बन पड़ा जाँ आपको धुब्ध बनाये हुए है ।

। जो लोग प्रत्येक कार्य में अपने को ही सर्वथा सही मानकर दूसरों को भ्रान्त मानते हैं वे भूल करते हैं । इससे सचाई दब जाती है और मनोमालिन्य तथा भ्रंशट बढ़ने लगते हैं । संसार के सभी व्यक्ति भिन्न-भिन्न स्वभाव, रुचि व प्रकृति के होते हैं । दो सगे भाइयों तक की आदतों में बड़ा अन्तर देखा जा सकता है, फिर सभी आपकी प्रकृति मान्यता या अभिरुचि का अनुकरण करें ऐसा सम्भव नहीं । किसी को चावल खाना पसन्द है, किसी को रोटी प्रिय है । इतना अन्तर तो प्रायः रहता ही है । इस तथ्य को समझते हुये, दूसरों को दोषी ठहराने, न ठहराने की समस्या का समाधान करने में आपको ही पिछली पंक्ति में खड़ा करना पड़ेगा । समन्वय से काम चल जाय तो अच्छी बात है किन्तु कदाचित् ऐसा नहीं होता तो भी अपनी रुचि भिन्नता को ध्यान में रखते हुए दूसरों की इच्छा सहन करनी चाहिये । दूसरों की इच्छा के लिए यदि अपनी अभिरुचि का दमन कर देते हैं तो प्रत्याशी पर आपकी इस सद्भावना का असर जरूर पड़ेगा । दूसरे क्षण वह आपकी इच्छाओं को प्राथमिकता देगा । घरेलू वातावरण में सद्भावना का वातावरण बनाये रखने के लिए यह अत्यावश्यक है कि प्रत्येक वस्तु का चुनाव करते समय आप यह मान लीजिए कि इसके दोषी आप भी हो सकते हैं तो आये दिन होने वाले झगड़ों में से बहुत से तो स्वतः ही मिट जायेंगे ।

प्रिय दर्शन मनुष्य का श्रेष्ठ सद्गुण है । औरों में अच्छाईयाँ देखने से अपने सद्गुणों का विकास होता है । यह कहना कि दूसरे ही निरे दोषी हैं, अनुचित बात है । संसार में हर किसी में कोई न कोई सद्गुण अवश्य होता है । किसी में सचाई अधिक है, कोई ईमानदार है, कोई नेक-चलन, कोई अच्छा वक्ता है कोई संगीतज्ञ है । आत्मीयता, उदारता, साहस, नैतिकता, श्रमशीलता जैसे सदाचारों में कोई न कोई सम्पत्ति हर किसी के पास मिलेगी । इन्हें ढूँढ़ने का प्रयास करें उनके सत्परिणामों पर ध्यान दें तो अपना भी जी करता है कि हम भी वैसा ही करें । आत्म-विकास का क्रम यही है कि दूसरों की

अच्छाइयों का अनुकरण करना मनुष्य को आगे बढ़ाता और ऊँचा उठाता है। मानव से महामानव बनने की पद्धति यही है कि छिद्रान्वेषण के स्वभाव को त्याग कर प्रत्येक व्यक्ति में जो भी अच्छाइयों दिखाई दें उनकी प्रशंसा कर और स्वयं भी वैसा ही बनने का प्रयत्न करें।

जिस प्रकार हम दूसरे व्यक्तियों के सत्कर्मों से प्रेरणा लेते हैं, उसी प्रकार अपने दोष दुर्गुणों को ढूँढ़ने और निकाल कर बाहर कर देने से आत्म-शोधन की प्रक्रिया और भी तीव्र होती है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी भिन्न भिन्न कठिनाइयाँ होती हैं। हो सकता है कोई अधीर हो, कोई चिड़चिड़ा हो, कोई ईर्ष्यालु अथवा अर्थलोलुप हो। जब इन कठिनाइयों विकारों की खोज-बीन कर लें तो उन पर शान्तिपूर्वक नियन्त्रण का प्रयास करना चाहिये। मान लीजिये किसी में चिड़चिड़ापन अधिक है, बात-बात में उत्तेजित हो जाता है। अपनी भूल समझता भी पर यह मान बैठता है कि यह दोष उसके स्वभाव का अङ्ग है। यह उससे छूटना सम्भव नहीं। ऐसी निराशा सर्वथा अनुपयुक्त है। मनुष्य चाहे तो अपने स्वभाव को थोड़ा प्रयत्न करके आसानी के सुधार सकता है। हमें अपना स्वभाव और दृष्टिकोण संघर्षमय न बनाकर रचनात्मक बनाना चाहिये। सड़क पर चलते हैं तो कंकड़ चुभेंगे ही किन्तु पैरों में जूते पहन लेते हैं तो चलते रहने की क्रिया में अन्तर भी नहीं पड़ता और आत्म-रक्षा भाँ हो जाती है। इसी प्रकार चिड़चिड़ेपन का प्रतिद्वन्द्वी मनोभाव धैर्य और सहिष्णुता को अपना लेने से भी मानसिक प्रहारों से रक्षा की जा सकती है। प्रत्येक अशुभ संस्कार से बचने का यही सीधा-सच्चा व सरल उपाय है।

दूसरों को उजड़ड, दुर्बुद्धि या विद्वंशी बताने की अपेक्षा अच्छा है कि आप स्वयं अपने आपको ही मिलनसार बनायें। औरों में दोष देखने का श्रम न करें। साथ ही अपनी उदारता दूरदर्शिता सहनशीलता जैसे सामाजिक सद्गुणों का विकास करते रहें। इस बुद्धिमत्तापूर्ण मार्ग पर चलने से ही यह सम्भव है कि दूसरे लोग आपका सम्मान करें आपकी बात मानें सहयोग और सहानुभूति का व्यवहार करें। प्रायः कोई व्यक्ति स्वेच्छा से बुरा नहीं बनता अतः मनुष्य को यह सोचने की भूल कदापि नहीं करनी चाहिये कि

हमारे विचारों के अनुसार जो लोग गलती करते हैं वे हमें परेशान करने के उद्देश्य से ऐसा करते हैं। इस प्रकार की कल्पनाओं से सावधान रहें ताकि किसी के साथ अन्याय न हो जाय। इसका कारण अपने स्वभाव की छोटी-छोटी त्रुटियाँ भी हो सकती हैं जिन्हें आप नगण्य मानते हैं। इसलिए दूसरों से सामंजस्य सौहार्द सौजन्य और आत्मीयता बनाये रखने के लिए यही उचित है कि जब कभी कोई अशुभ परिस्थिति उठती दिखाई दे तब अपने दोषों को भी देख लिया करें। ऐसा दृष्टिकोण अपनाने से आये दिन दूसरों के साथ होते रहने वाले झगड़ों में अधिकांश तो स्वयं ही निर्मूल हो सकते हैं।

छोटी-सी बुराई से सावधान रहें

सैद्धान्तिक जीवन के प्रति लोगों की भावनायें कितनी ही ऊँची क्यों न हों यदि व्यावहारिक जीवन शुद्ध और सतर्क नहीं है तो उससे मनुष्य को कोई आन्तरिक सन्तोष न मिल सकेगा। व्यावहारिक आचरण व्यक्त होता है इसलिये उनका लोगों पर अधिक प्रभाव पड़ता है। किसी के अन्तःकरण में क्या छिपा है इसे कोई नहीं जानता। बाह्य अभिव्यक्ति के आधार पर ही एक व्यक्ति दूसरे की भावनाओं का अन्दाज लगाता है। किसी की हमारे प्रति कैसी भावनायें हैं? इसका पता उसके व्यवहार से ही चलता है।

मनुष्य जैसा बाहर से व्यवहार करना है वैसा ही उसका अन्तःकरण भी होगा यद्यपि यह बात पूर्ण सत्य नहीं है तो भी लौकिक जीवन में उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों तथा मुशीबतों को देखते हुए लोगों से यही कहा जाता है कि जो कुछ करने की इच्छा मन में उठे पहले उसे तौल लें उसके परिणाम को भली प्रकार विचार लें। आवेश में अविवेकपूर्ण कार्य कर डालने से बाद में मनुष्य को बहुत पश्चात्ताप करना पड़ता है। गलती हो जाती है और भूल समझ में आ जाती है तो भी भूल सुधार नहीं हो पाता। चाहते हुये भी समस्या दूर नहीं होती वरन् वह अनेकों दूसरी कठिनाइयों में बदलती चली जाती है और मनुष्य की उद्विग्नता भी उसी हिसाब से बढ़ती जाती है। छोटी-सी बुराई का जाल भी जब उलझ जाता है तो उससे निकलना मनुष्य के लिये कठिन

अपने दोषों को०]

हो जाता है इसलिये प्रत्येक कार्य की शुरुआत के पूर्व उसके परिणाम पर विचार कर लेना आवश्यक हो जाता है। बुराई चाहे कितनी ही छोटी समझ में आये यह नहीं भूलना चाहिये कि उसके परिणाम बहुत गम्भीर भी हो सकते हैं। पहले यह भले ही समझ में न आये पर समस्या उलझ जाती है तो इस बात का सहज ही में अनुमान हो जाता है।

क्षणिक मनोरंजन के लिये एक व्यक्ति शराब पी लेता है। वह समझता है कि इससे अधिक से अधिक शारीरिक क्षति ही होगी, थोड़ा-सा स्वास्थ्य भी गिरेगा। किन्तु शराब पी लेने के बाद उसे निज का ज्ञान जाता रहा। अब तक वह भले ही सज्जन व्यक्ति रहा हो। पर शराब को इससे क्या प्रयोजन? उसे तो अपना प्रभाव दिखाने से मतलब। नशे में धुत्त आदमी में भी कहीं सज्जनता रहती है? शराब को पाक्षविक वृत्तियों को उत्तेजित करना था सो उसने अपना काम पूरा कर दिया। अब उन उत्तेजित भावनाओं को लेकर मनुष्य शांत कैसे रह सकता है? वह भी दूसरों को गाली देता है, झगड़ता है, मार-पीट मचाता है। भले ही अचेतन अवस्था में उसने यह सब किया हो पर दूसरों में इतनी सन्निधुता कहाँ होगी? इतनी बदर्शित की क्षमता भला किसमें होगी कि कोई व्यक्ति गालियाँ बके, मारे-पीटे और वह चुपचाप खड़ा रहे। परिणामतः कलह हुआ। चोटें आईं मुकदमे चले और बर्बादी हुई। शराब पीने की गलती बहुत छोटी दिखाई देती थी किन्तु उसके परिणाम की विभीषिका में जानें तक जाती देखी गई हैं। कोई भी बुराई कितनी ही छोटी क्यों न दिखाई दे, उससे बुद्धिमान् व्यक्तियों को सदैव सावधान ही रहना चाहिये।

महर्षि विश्वामित्र बहुत बड़े तपस्वी थे। उनका प्रभाव बहुत बढ़ा-चढ़ा था। साधना के लिए उनमें गम्भीर आस्था थी। आत्मिक शक्तियों की भी उनके पास कमी न थी। पर भूल एक क्षण की उनके लिए घातक बन गई। क्षणिक कामावेश को महर्षि रोक न सके, फलस्वरूप बहुत काल की साधना के फल से उन्हें वंचित होना पड़ा। हर बुराई मेनका का-सा सुन्दर रूप बनाकर ही आती है। चतुर-जन उसे दूर से ही नमस्कार कर लेते हैं किन्तु



जो बिना विचारे ही उसे आश्रय दे देते हैं, महर्षि की तरह बाद में उन्हें पश्चात्ताप ही करना पड़ता है।

प्रतिदिन कोटि गायों का दान करने वाले नृपति-नृग ने एक गाय की भूल की और गिरगिट की योनि में जाना पड़ा, महाराज युधिष्ठिर को थोड़े से झूठ के पीछे नरक की यातनायें सहनी पड़ीं। सामान्य मनुष्यों के लिये तो कहना ही क्या जबकि संसार के महापुरुषों ने छोटी बातों की उपेक्षा की और उनके कटु परिणाम उन्हें मुगतने पड़े। इतिहास प्रसिद्ध महाभारत की घटना का कारण थोड़े से शब्द थे, जिनसे दुर्योधन का अपमान किया गया। विश्व-विजयी नेपोलियन की हार का कारण उसके द्वारा अपने एक सेनापति को कठोर दण्ड देना बताया जाता है। ये ऐतिहासिक घटनायें देखने में छोटी प्रतीत भले ही होती हों किन्तु इनसे जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या का हल निकलता है और वह यह है कि यदि मनुष्य चैन का प्रसार चाहता है तो उसे छोटी-छोटी बातों की भी उपेक्षा कभी भूलकर नहीं करनी चाहिये।

हर बड़े उत्पात का जन्म छोटी बुराई के गर्भ से ही होता है। छोटी-सी कटु बात भी घोर संघर्ष का कारण बन जाती है। भाइयों-भाइयों में पिता-पुत्रों में स्वामी और सेवक में कलह होती है, कटुता उत्पन्न होती है तो उनके पीछे कोई बड़ा कारण नहीं होता। किसी को अप्रिय बात कह देने, उचित सम्मान न देने, समानता का व्यवहार न करने के कारण ही इन मधुर सम्बन्धों में विकृति आती है और घर की शान, समृद्धि तथा उन्नति का द्वार बन्दकर चली जाती है। बड़े दुष्परिणाम न सहने पड़ें इसके लिये यह आवश्यक है कि हमारी निगाह छोटी से छोटी आदत पर, आवेश पर, वाणी पर और क्रिया पर बनी रहे ऐसा करने से ही बड़ी कठिनाइयों से बचना सम्भव हो सकता है।

बच्चा घर की कोई चीज उठा कर ले गया, कोई चीज चुपचाप बनिये को दे आया, चुपचाप मिठाई चुराकर खा ली, पर अभिभावकों ने कान न दिया। बच्चा अपना था इसलिये उठा लिया होगा ऐसी मान्यता प्रायः भारी पड़ती है। बच्चों को पूर्व में अनुशासन की, नियमितता की शिक्षा नहीं मिलती तो वही आगे चलकर उद्दण्ड और दुराचारी बनते हैं। घर की छोटी चोरी



करने वाले ही आगे चलकर बड़ी चोरियों की हिम्मत करती हैं। बड़े दुस्साहस लोग प्रारम्भ में ही नहीं करते वरन् इस योग्यता तक पहुँचाने का कार्य छोटी-बुराइयाँ करती हैं। वे ही बड़े दुष्कर्मों का प्रशिक्षण करती हैं। आरम्भ की गलती पर सावधानी की नजर रखी जाय तो मनुष्य बड़े अनिष्टों से सहज छुटकारा पा सकता है।

प्रत्यक्ष हों या अप्रत्यक्ष प्रकट हों या अप्रकट, बुराई का बुरा फल अवश्य मिलना है। छुपकर की गई बुराइयाँ खुली हुई बुराइयों से और भी अधिक घातक होती हैं। ऐसी दशा में अपनी आत्मा भी साथ नहीं देती और अन्तःकरण में द्वन्द्व की स्थिति हो जाती है। स्वामी रामतीर्थ कहा करते थे—“बुराई के बीज चाहे गुप्त से गुप्त स्थान में बोओ, वह स्थान चाहे किले की तरह ही सुरक्षित क्यों न हो, पर प्रकृति के अत्यन्त कठोर, निर्दय, अमोघ, अपरिहार्य कानून के अनुसार तुम्हें व्याज सहित कर्मों का मूल्य चुकाना ही पड़ेगा।” बुराइयाँ गुप्त रहकर भी जीवित रहनी और पनपती हैं, इस बात में बिल्कुल सन्देह नहीं। क्योंकि उससे अपनी आत्मा तो पतित होगी द्रो और नीच प्रवृत्तियों की ओर अग्रसर भी जरूर होंगी। मनुष्य में दुष्प्रवृत्तियाँ बढ़ें और वह शान्ति से बना रहे यह नामुमकिन है। बुराई के दण्ड से न आज तक कोई बचा है और न आगे कोई बच सकेगा।

मनुष्य जीवन बड़ा बहुमूल्य है। एक बार मिलने के पश्चात् किसे मालूम कब जन्म हो। यह शरीर भी कब नष्ट हो जाय, कुछ पता नहीं। अतएव पग-पग पर सजग रहने की आवश्यकता है। जरा-सी असावधानी से आप भारी सङ्कट में फँस सकते हैं।

मामूली-सी कब्ज बढ़कर छोटी-बड़ी बीमारियों का रूप धारण कर सकती है। छोटा-सा फोड़ा पक कर घाव बन जाता है। शारीरिक बुराइयों का जो फल शरीर पर पड़ता है, मानसिक कुविचारों का उससे भी घातक प्रभाव मनुष्य की आन्तरिक शान्ति और व्यवस्था पर पड़ता है। जो लोग क्षणिक आवेश में पड़कर किसी बुराई को बुलाते हैं उन्हें उसका दुष्परिणाम

भी मृगतना पड़ता है। अतः हमें अपना प्रत्येक कदम बहुत सही, बिल्कुल नपा-तुला रखना चाहिये।

जीवन की घड़ियाँ गिनी चुनी हैं। इसका सच्चा सदुपयोग आत्म-विकास है, अपने आपको गुणावान् बनाने से बढ़ कर कल्याणकारी वस्तु और नहीं। पर बुराईयाँ हमें उधर जाने से रोकनी हैं। इनके विषय में बहुत सतर्क रहिये। अच्छाईयों का एक-एक तिनका चुन-चुन कर जीवन भवन का निर्माण होता है पर बुराई का एक हलका झोंका ही उमे मिटा डालने के लिये पर्याप्त होता है। अतः आने वाला प्रत्येक क्षण अपनी जागरूकता का विषय होना चाहिये। सतर्कता देवी गुण है। बुराईयों के प्रति निरन्तर सतर्क रहने से मनुष्य अपने जीवन के अनेक कंटक दूर कर सकता है।

महत्वाकांक्षाओं का पागलपन

‘वित्तेषणा, पुत्रेषणा और लोकेषणा की तृष्णा, वासना अहंता से विक्षुब्ध हुये मनुष्य उन उत्पानी पागलों का रूप धारण कर लेते हैं जो न स्वयं चैन से रहते हैं और न दूसरों को चैन से रहने देते हैं। महत्वाकांक्षी व्यक्ति अपने लिये विशेष लाभ भले ही प्राप्त कर लेते हों, पर जन समाज के लिये वे सङ्कट रूप ही बने रहते हैं। असंतुष्ट जीवन में जीने का कोई आनन्द ही नहीं। जो कुछ हमें मिला है उस पर सन्तोष, गर्व और उल्लास करते हुये यदि आज आनन्द नहीं मना सकते हैं, तो कल यदि आज से अधिक मिल जाय तो सुखी बन सकेंगे इसका क्या भरोसा? तृष्णा तो हर सफलता के बाद आग में घी डालने की तरह बढ़ती ही जाती है। इसलिये जिन्हें निरन्तर लालसाओं, कामनाओं की आग में झुलसना हो, उन्हीं को अपनी मनोभूमि में असन्तोष रूपी जीवित चिता सँजो लेना चाहिए।

समाज सेवा, परमार्थ, आत्म-विकास, विद्याध्ययन-भौतिक उन्नति का प्रत्येक कार्य देर तक कर सकना उन्हीं के लिये संभव होता है जो धैर्यवान् और स्थिर चित्त हैं और ये दोनों गुण केवल उन्हें प्राप्त हो सकते हैं जो अपनी आज की उपलब्धियों पर सन्तोष अनुभव करते हुए कल अधिक उन्नतिशील



बनने को अपना एक सरल स्वाभाविक कर्तव्य है। सन्तोष का धन हैं पर सन्तोष का धन सबसे बड़ा धन है कबीरजी कहते हैं, 'सागरगर्भित है जिसमें कहा गया है—“जब आवे सन्तोष धन सब धन धूरि समान ।” वह धन जहाँ भी होगा वहाँ आनन्द की निर्भरिणी रहेगी। पति-पत्नी यदि आपस में सन्तुष्ट हैं तो उन्हें स्वर्गीय जीवन का रस इसी जीवन में उपलब्ध होगा। गाँव के लड़के पढ़-लिखकर शहरों को भागते हैं यदि उन्हें ग्राम्य-जीवन में सन्तोष रख सकने का साहस हो तो शहरी तड़क-भड़क में अपने स्वास्थ्य की बर्बादी करने की अपेक्षा ग्रामीण समाज को और अधिक अच्छा बनाने के लिये उसी क्षेत्र में रहकर अपनी और अपने देहाती भाइयों की बहुत बड़ी सेवा कर सकते हैं।

हर व्यक्ति अपने गुण कर्म स्वभाव का अधिकाधिक विकास करे यह उचित है। अधिक सेवाभावी होना अधिक सभ्य सुसंस्कृत एवं आदर्शवादी होना किसी भी व्यक्ति के लिये कम गौरव की बात नहीं है। यही महत्त्वकांक्षायें उचित है और जीवनोपयोगी भी। उन्हीं की छूट हर आदमी को रहनी चाहिये। पर अधिक धन जमा करने की, अधिक ऐश करने की, अधिक वाह-वाही लूटने के लिये कानूनी या नैतिक नियन्त्रण रहे तो यह सर्वथा उचित ही होगा।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण सन्तोष का दृष्टिकोण है। उसमें हर व्यक्ति को धैर्य और औचित्य के साथ-साथ प्रगति करने चलने की छूट है पर जनसाधारण के मध्यम स्तर में बहुत अधिक ऊँचा बढ़ने का निषेध है। जिसमें जो योग्यतायें हों वे उन्हें अपने से छोटे या पिछड़े हुए साथियों को उन्नतिशील बनाने में खर्च करें और जिस प्रकार फौजी सिपाही साथ-साथ कदम से कदम मिलाते हुए एक ही पोशाक और वर्दी धारण करते हुये मार्च करते चलते हैं उसी प्रकार हमें भी अपने सारे समाज को एक समान विकसित करते हुए साथ साथ आगे बढ़ने की बात सोचनी चाहिये।

भगवान् बुद्ध जब मरने लगे और उनसे पूछा गया कि क्या आपको इस मृत्यु के बाद स्वर्ग या मुक्ति की प्राप्ति होगी? तो उन्होंने हँसकर कहा—“जब



तक एक व्यक्ति इस संसार के बन्धन से बँधा हुआ है तब तक मैं अपनी व्यक्तिगत सुख आकांक्षा की कामना नहीं कर सकता। मैं बार-बार जन्मूँगा और मनुष्य और हर प्राणी को अपने स्तर का बनाने के लिये सृष्टि के अन्त तक प्रयत्न करता रहूँगा। 'यही है आध्यात्मिक साम्यवाद। सम्य व्यक्ति का सम्य समाज का यही आदर्श होना चाहिये। व्यक्ति को क्षमता एवं प्रतिभा ईश्वर ने इसी उद्देश्य के लिये दिये हैं कि वह अपने से पिछड़े लोगों को कम से कम अपने स्तर तक ऊपर उठाने में उसका उपयोग करे। गुजर-बसर के वारे में जो जितना संयमी रहता है और स्वेच्छा से गरीबी का जीवन स्वीकार करता है वह जितना ही बड़ा माना जाता है। भारतीय संस्कृति का यही सनातन आदर्श रहा है। ऋषि मुनि स्वेच्छा से गरीबी का जीवन व्यतीत करते रहे हैं। जन समाज में भी वही प्रशंसनीय है जो अपनी व्यक्तिगत भौतिक सुख-सुविधायें इकट्ठी करने में नहीं, अपनी सामर्थ्य से जो दूसरों को सुखी बनाने में एक श्रेष्ठ सत्पुरुष की तरह संलग्न है। भारत की आत्मा एक ही स्वर में पुकारती रही है—

न त्वहं कामये राज्यं न सौख्यं न पुनर्मवम् ।

कामये दुःख तप्तानां प्राणिनामातनाशनम् ॥

मैं अपने लिये राज्य की, सुख की, स्वर्ग की कामना नहीं करता, मेरी एक मात्र आकांक्षा यही है कि दुःखियों के दुःख दूर करने में अपने को घुला और गला सकूँ।

यह आदर्श जिन्होंने जीवन में धारण किया हुआ है वे ही विश्व शांति के स्तम्भ बन सकते हैं। उन्हीं की सख्या बढ़ने से यह वमुधा अपने को धन्य मान सकती है ऐसे ही नर रत्नों से यह संसार गुलाब के महँकते फूलों से भरे बगीचे की तरह सुशोभित हो सकता है उन्हीं की परमार्थ बुद्धि का लाभ उठा कर छोटे-छोटे अनेकों को आगे बढ़ने का अवसर मिलता है। चन्दन का वृक्ष अपनी सुगन्धि से अपने समीपवर्ती अनेक पौधों को सुवासित कर देता है। यही जीवन-यापन की सर्वश्रेष्ठ नीति है। पर यह संभव उसी के लिये हो सकती है जो व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं की दृष्टि से अन्धा और पागल नहीं हो रहा है।



जिमे दौलत ! दौलत !! दौलत की निरन्तर रट लगी रहती है और इसी गोरखधन्धे में मकड़ी के जाले की तरह दिन-रात उलजा हुआ ताना-बाना बुनता रहता है उसे इतनी फुरसत नहीं मिलेगी जो अपने से गिरे हुए की बात सोचे, जो अपनी आन्तरिक दुर्बलताओं के सम्बन्ध में विचार करे जो आदर्श-वादी जीवन-यापन करने के लिए अपने को संयमी और सीमित रखकर दूसरों को सुखी संतुष्ट बनाने के लिए कोई कदम बढ़ाने का साहस करे ।

असन्तोष भी सराहनीय हो सकता है पर वह होगा तभी, जब उसका उपयोग जाति-कल्याण, साधना, संयम, सेवा, ज्ञानवृद्धि, परमार्थ जैसी दैवी सम्पदाओं को बढ़ाने के लिये हो । आसुरी सम्पदायें बढ़ाने का असन्तोष तो जितना ही बढ़ेगा उतनी ही अशान्ति उत्पन्न करेगा । संघर्षों की जड़ यही है । अधिकारों के लिए सब जागरूक हैं, कर्तव्यों की किसी को चिन्ता नहीं । हर व्यक्ति के मुँह से यही बात सुनी जाती है कि मुझे यह नहीं मिला, यह नहीं दिया गया, इससे मैं बचित हूँ । किसी फूटे मुँह में से यह शब्द सुनाई नहीं पड़ते कि मुझे दुनियाँ में इतना मिला लोगों ने इतना दिया । हमें जो उपलब्ध है क्या बत्त लाखों करोड़ों की अपेक्षा कहीं अधिक नहीं है ? ईश्वर ने, समाज ने, जितना हमें दिया है उसके प्रति क्या हम उपयुक्त कृतज्ञता के भाव धारण किये हुए हैं ? मन में ऐसी भावना नहीं आती कि क्षणभर के लिए अपनी उपलब्धियों पर हर्ष मनाने, सन्तोष अवगत करने, कृतज्ञता प्रकट करने और धन्यवाद देने की गुंजायश रहे । ऐसी श्मशान जैसी मनोभूमि जिनकी बनी हुई है । उन्हें अपने जीवन में भला कहाँ रस आ सकता है ? जिन्हें हर घड़ी तृष्णा सताती रहती है वे उद्विग्न प्रेत, पिशाच की तरह इस मरघट से उस मरघट में भटकते रहते हैं । ये अभागे अपनी ही हीनता के मारे हुए हैं, अपनी ही अतृप्ति से दुःखी बने हुए हैं, भला इनके द्वारा किसी दूसरे का क्या हित-साधन हो सकता है ?

धन की तरह ही ख्याति और मान प्रतिष्ठा की महत्वाकांक्षा भी संसार में भारी विपत्ति उत्पन्न करने वाली सिद्ध होती है पद, सत्ता और अधिकार के लोभ में उतने ही अनर्थ होते हैं जितने धन-लिप्सा से होते हैं । संस्थाओं के



पदाधिकारी बनने के लिये, स्वयं श्रेय लाभ करने के लिये कितने व्यक्ति बुरी तरह लड़ते हैं, गुटबन्दी करते हैं और संस्था तथा आदर्श को भारी क्षति पहुँचाते हैं। संस्थाओं में भीतर गुटबन्दी का कारण व्यक्तियों की श्रेय आकांक्षा ही रहती है। सच बात यह है कि बिना पदाधिकारी बने कोई भी व्यक्ति किसी संस्था को अधिक सेवा कर सकता है। पर लोगों की सेवा की नहीं प्रतिष्ठा की भूख रहती है, फलस्वरूप सार्वजनिक संगठनों को कलह का अखाड़ा बनाते और दुर्गतिग्रस्त होते आये दिन देखा जाता है।

थोड़ा त्याग करके बहुत यश लूटने की लिप्सा बहुत लोगों में देखी जाती है। अखबारों में नाम और फोटो छपाने के लोभ में कई लोग सत्कर्मों का बहाना करते रहते हैं। यश मिलने की शर्त पर ही थोड़ी उदारता दिखाने वाले लोग बहुत होते हैं। कितने ही लोग इसके लिये बड़ी-बड़ी प्रवचनायें करते हैं, वे अपने साथी सहयोगियों के साथ विश्वासघात करने में भी नहीं चूकते। ठाठ-बाट, फैशन, सजावट में भी यही महत्वाकांक्षा काम करती है कि हमें बड़ा आदमी और अमीर समझा जाय। इसी उद्देश्य से लोग निरर्थक और खर्चीला आडम्बर बनाये रहते और उसके भार से दबे हुए भारी कठिनाई एवं चिन्ता सहन करते रहते हैं। भौतिक महत्वाकांक्षायें मनुष्य के लिए सदा ही विपत्ति साबित होती रही हैं। जो उन्हें जिस हद तक छोड़ सके उसे उतना ही बुद्धिमान मानना चाहिये।

महत्वाकांक्षायें यदि तृष्णा और वासना के लिये जगी हुई हैं तो वे व्यक्ति और समाज से लिये अहितकर ही सिद्ध होंगी। कोई व्यक्ति अधिक धनी बनकर अधिक ऐश आराम भोगकर अपनी दुष्प्रवृत्तियों को ही भड़का सकता है। उससे अन्ततः उसका पतन ही होगा। प्रगति और सन्तोष का एक ही सच्चा माध्यम है, वह है व्यक्तित्व का विकास। सद्गुणों को अपना कर, संयम और सदाचार, सेवा और सद्भावना की अधिकाधिक मात्रा जब अन्तःकरण में बढ़ती जाती है तो व्यक्ति का विश्वास होता है। दया, करुणा, त्याग और परमार्थ की भावनाओं को चरितार्थ करने की महत्वाकांक्षायें ही सच्ची और श्रेयस्कर महत्वाकांक्षायें कही जा सकती हैं। देवी सम्पदाएँ, संप्रवृत्तियाँ ही वह

आध्यात्मिक विभूतियाँ हैं जिन्हें पाकर मनुष्य स्वयं भी आनन्द और संतोष का लाभ करता है और अपने समीपवर्ती समाज को भी सुख-शांति का आनन्द देता है।

जीवन का स्तर ऊँचा उठाने का यह अर्थ गलत है कि भौतिक सुख सुविधाओं के ऐश आराम के साधनों को हम बढ़ाते चलेँ और मनुष्य जन्म की दुर्लभ विभूति को इसी में बर्बाद कर दें। जीवन जीने का आदर्श एवं दृष्टिकोश और ऊँचा उठे तो यही कहा जा सकेगा कि जीवन स्तर सच्चे अर्थों में ऊपर उठा है। व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं के पागलपन ने दुनिया का अनर्थ ही किया है, पाप और विनाश को ही बढ़ाया है इन्हें त्यागा ही जाना चाहिए। महत्वाकांक्षाओं का सही अर्थ परमार्थ है। इसमें एक दूसरे से आगे बढ़ने की प्रतिस्पर्धा यदि स्वस्थ रूप से चलती रहे तो इसमें अपना भी हित साधन है और समाज का भी।

दुर्गुणों को त्यागिए, सद्गुणी बनिए

संसार में कोई किसी को अपना परेशान नहीं करता जितना कि मनुष्य के अपने दुर्गुण और दुर्भावनायें। यह दुर्गुण रूढ़ी शत्रु हर समय मनुष्य के पीछे लगे रहते हैं, किसी समय उसे चैन नहीं लेने देते।

सबसे दुर्गुणी व्यक्ति दुर्व्यसनी होता है। दुर्व्यसन मनुष्य के शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार के स्वास्थ्यों के शत्रु होते हैं। शराब, जुआ, व्यभिचार ही नहीं बल्कि, आलस्य, प्रमाद, पिशुनता आदि भी भयानक दुर्व्यसन ही हैं।

यदि मनुष्य शराब पीता है या अन्य किसी प्रकार का नशा करता है, जुआ खेलता है अथवा व्यभिचार में प्रवृत्त है तो वह न केवल धन का क्षय करता है अपितु अनेक प्रकार की शारीरिक मानसिक एवं बौद्धिक व्याधियों को भी आमंत्रित करता है।

मनुष्य कितना ही स्वस्थ एवं सम्पन्न क्यों न हो उसकी लत उसे निर्बल तथा निर्धन बना कर ही छाँड़ेगी। जब तक शरीर रहता है, धन की गर्मी



रहती है, मद्य का विषला प्रभाव अनुभव नहीं होता। पर ज्यों ही इनकी कमी होने लगती है कि शराब का जहरवाद फैलना शुरू हो जाता है। धन की कमी हो जाने के उसकी मद्य का स्तर गिरने के साथ ही स्वास्थ्य का पतन उत्तरोत्तर तीव्र होता जाता है। शीघ्र ही एक दिन ऐसा आता है कि जीवन की कृत्रिम आवश्यकता बनी शराब का न मिलना उसके लिये मौत की पीड़ा बन जाती है। ऐसे अभावग्रस्त शराबी की जिन्दगी एक जीता जागता नरक बन जाती है। शराब के अभाव में वह तड़पता, घर की चीजें बेचता, दूसरों के आगे हाथ फैलाता और अपनी मान-प्रतिष्ठा को भी बलिदान कर देने के लिये तैयार हो जाता है। शरीर उसका रोगी और जीवन एक भार बन जाता है।

मद्यप आँखें रहते हुए भी अन्धा और बुद्धि रहते हुए भी मूर्ख होता है। उसे भूत, भविष्यत्, वर्तमान कुछ भी दिखलाई नहीं देता। यदि भूतकाल को वह देख सके तो बीते हुए शराबियों की दशा, अपनी सम्पन्नता का ह्रास और तुलनात्मक दृष्टि से अपने गिरते हुए स्वास्थ्य से शिक्षा ले सकता है। यदि वर्तमान उसे दिखाई दे सके तो समाज में अपनी प्रतिष्ठा, परिवार की दुर्दशा और चारों ओर अभाव का कारागृह देखकर सुधर सकता है। यदि भविष्य उसको दिखाई दे सके तो बच्चों की अशिष्टा, बेटियों के विवाह बूढ़ापे की तैयारी आदि की चिन्ता से सावधान हो सकता है। किन्तु मद्यप तो त्रयकालिक अन्ध होता है। उसे यदि कुछ दीखता है तो बोलत और उसकी मादकता के विष से अपनी मूर्खावस्था का काल्पनिक सुख।

शराबी की चिन्ताओं का कोई ओर-छोर नहीं रहता। जब वह अपने होश में आता है तो एक भले आदमी की तरह कल्याणकर चिन्ता के बीच से गुजरता है। किन्तु वह किसी चिन्ता को दूर करने की स्थिति में तो रहता नहीं, अतएव ये सारी चिन्ताएँ उसे नई-नई नागनियों की तरह ही इसती रहती हैं। चिन्ताओं से परेशान होकर मद्यप पुनः शराब की ओर दौड़ता, न मिलने पर तड़पता और मिल जाने पर उसे पीता और जीवनशून्य होकर पड़ा रहता है। आवश्यक चिन्ताओं से छूटने के लिये यह शराब की चिन्ता करता और शराब की चिन्ता पूरी होने पर आवश्यक चिन्ता में लग जाता है।



अपने दोषों को •]

और केवल चिन्ता करना उसका जीवन-क्रम बन जाता है। निवारण की शक्ति तो उसमें रहती ही नहीं, अतएव एक मात्र चिन्ताओं की चक्की में पिस-पिस कर मरना ही उसका भाग्य बन जाता है। कितना घोर, कितना कष्टकर और कितना भयानक जीवन होता है एक मद्य का। वह वास्तव में जिन्दगी जीता नहीं मरता है।

जुआ संसार के सारे व्यसनों का राजा है। जुआरी प्रतिक्षण जीता और मरता रहता है। क्षण-क्षण पर एक नया आघात सहता हुआ भयानक जीवन बिताता है। कानून से द्रस्त, समाज से भयभीत और परिवार से डरा हुआ वह किसी गुप्त स्थान पर नोटों के रूप में अपनी और अपने परिवार की जिन्दगी में आग लगाया करता है। दाँव पर बैठे हुए उसके हृदय की धक्-धक् में जीवन-मृत्यु का स्पन्दन रहता है। दाँव हारने की सम्भावना उसका रक्त सुखाती और जीतने की खुशी उस कुत्रल कर रख देती है।

जुए की जीत हार से भी बुरी होती है। हारने पर वह हताश हो सकता है, निराश होकर कुछ देर के लिए उससे जुआ छूट सकता है। किन्तु जीतने पर होश ठिकाने नहीं रहने। वह विक्षिप्त की तरह दाँव लगाता, अहङ्कारपूर्ण बात करता और पागलों की तरह चाल चलता है। यदि जीत का उन्माद हार के तमाचे से विचलित हो जाता है तब तो वह पागल कुत्ते की तरह भयानक हो उठता है। अपना सर्वस्व दाँव पर रखकर भी वह एक बार जीतना चाहता है और इसी क्रम में भिखारी बन जाता, समाज की दृष्टि में गिरता और कानून के पजे में फँसता है। परिवार विलखता, पत्नी रोती और बच्चे भूखों मरते हैं। यूँ-व्यसनी की यह दशा अबाद नहीं, हर जुआरी की परिसीमा इसी दुर्दशा में है।

जुआरी की एकमात्र चिन्ता दाँव के लिये धन जुटाने की रहती है। अन्य चिन्ताओं का हल वह अपने दाँव में ही देखता है। उसे हर दाँव पर जीतने की आशा रहती है। वह यही सोचा करता है कि अबकी नहीं तो अबकी दाँव पर वह दो गुना, तीन गुना और चार गुना वापस कर लेगा, और उसी धन से सारी समस्याओं का समाधान कर लेगा। उसे बच्चों की शिक्षा



शादी-ब्याह, रहने-सहने और खाने पीने की की सारी समस्याओं का हल एकमात्र अपने एक आगामी दाँव में ही दीखता है। यह आशा कितना बड़ा धोखा कितनी बड़ी विडम्बना और भयानक आत्म प्रवंचना है

जहाँ हार जुआरी को भिकारी बना देती है वहाँ जीत उसे शराबी, व्यभिचारी, अहङ्कारी और अपराधी बना देती है। हार-जीत में एकसा ही भयङ्कर परिणाम देने वाले व्यसन जुए के जाल में फँसा हुआ व्यक्ति दीन-हीन ऋणी होकर तिल-तिल जलता और मरता रहता है। अभिशाप है एक जुआरी की जिन्दगी। जुआ जैसे व्यसन को दुर्भाग्य एवं दुर्देव की फटकार समझ कर उससे दूर रहने में ही कल्याण है।

व्यभिचार वृत्ति का मानव किस दुःशाली को प्राप्त नहीं होता। व्यभिचारी की दृष्टि में पाप का निवास होता है। वह लम्पट एवं लोलुप होता है। व्यभिचार को क्या अपनी और क्या पराई किसी की भी प्रतिष्ठा का विचार नहीं रहता। मर्यादा, नैतिकता, आदि पूजनीय शब्दों के प्रति उसका कोई सद्भाव नहीं होता।

व्यभिचारी जहाँ विविध व्याधियों का शिकार बनता है वहाँ समाज में घोर अप्रतिष्ठा का पात्र। निकट से निकट सम्बन्धी और घनिष्ठ से घनिष्ठ मित्र उसका विश्वास नहीं करते। व्यभिचारी व्यक्ति कितना ही पद और पदवी वाला क्यों न हो कोई भी उसे सम्मान की दृष्टि से नहीं देखता। व्यभिचारी के आगमन पर हर्ष होने के बजाय लोगों को शंका एवं घृणा होती है।

व्यभिचारी अपने इस असम्मान को पूर्ण रूप से देखता, अनुभव करता और पीड़ा पाता किन्तु अपनी दुर्वृत्ति के कारण मजबूरन सहन करता है। अश्लीलता, असभ्यता, आवारागर्दी उसके स्वभाव के अङ्ग बन जाते हैं। लज्जा शील, दया और शर्म नामक मानवीय गुण व्यभिचारी को छोड़कर चले जाते हैं और वह कुल कलंक समाज का शत्रु हजार बार अपमानित होने, दण्ड पाने और बहिष्कृत होने पर भी अपनी नीच हरकत नहीं छोड़ता।

व्यभिचारी समाज को सबसे अधिक हानि पहुँचाता है। अपनी विषैली वृत्तियों से समाज का वातावरण दूषित करता है। लोगों में दुर्गुण जगाता और अपने जैसे नर-पिशाचों को लेकर न जाने किन-किन बुरी बातों को फैलाने



का प्रयत्न करता है। दूसरों की इज्जत पर हाथ डालने का प्रयत्न करने वाले व्यभिचारी बदले में अपने कुल की प्रतिष्ठा खोकर अधिकतर आत्म हत्या में ही उसका प्रायश्चित्त करते हैं।

सद्गुणी व्यक्ति को सारा समाज हाथों-हाथ लिये रहता है, आदर सम्मान और प्रतिष्ठा उसके नाम लिख जाती है, सहयोग, सौहादय एव सहानु-भूति उसकी अपनी सम्पत्ति बन जाती है। सद्गुणी न कभी निधन रहता है और न परेशान। वह सदैव स्वस्थ तथा सुखी रहा करता है।

शुभ-संस्कार संचित कीजिये

महर्षि बाल्मीकि, सन्त तुलसीदास, भिक्षु अंगुलिनाल, गणिका, अनामिक आदि अनेकों कुसंस्कारों में ग्रसित व्यक्ति भी जब सन्मार्ग पर चलने लगे तो उनका जीवन पुण्यमय, प्रकाशमय बन गया। मनुष्य संस्कारों का गुलाम हो जाय, अपने स्वभाव में परिवर्तन न कर सके, यह असम्भव नहीं है। मनुष्य के विचार गीली मिट्टी और संस्कार उस मिट्टी से बने वर्तन के समान होते हैं। पिछले कुसंस्कारों का घड़ा तोड़कर नये विचारों की मिट्टी से नव-जीवन घट का निर्माण कर सकते हैं। इसमें राई-रत्ती भर भी सन्देह न करना चाहिए।

मनावैज्ञानिकों का कथन है कि आत्म-विश्लेषण और आत्म-निरीक्षण द्वारा इन दुष्टप्रभावों से बचा जा सकता है। आत्म-विश्लेषण का अर्थ है प्रवृत्तियों के मूल कारण की तलाश करना। अर्थात् द्वेषपूर्ण भावनायें जिस आधार पर उठीं, उस आधार को ढूँढ़ना और उसे नष्ट करना। आत्म-निरीक्षण का अर्थ है अपने विचारों और कार्यों की न्यायपूर्ण समीक्षा करना बुराइयाँ पक्षपातपूर्ण विचार पद्धति के कारण हो उठती हैं। मनुष्य की यह सबसे बड़ी भूल है कि वह जिस वस्तु को चाहता है उसे किसी न किसी भूमिका के साथ टिका देता है। इसी को विचार और कार्यों का पक्षपात कहते हैं। जैसे बीड़ी, सिगरेट या अन्य कोई मादक पदार्थ सेवन करने वालों की हमेशा यह दलील रहती है कि उससे उन्हें शान्ति मिलती है या मानसिक तनाव दूर होता है। कई तो यहाँ तक कहते हैं कि बीड़ी, सिगरेट न पियें तो पाचन-क्रिया ठीक



प्रकार काम नहीं करती। पर यदि कठोरतापूर्वक विचार करें तो यह स्पष्ट दिखाई देता है कि शराब, सिगरेट के पक्ष में जो दलीलें देते रहते हैं वे सवथा निस्सार हैं। यह तो मन बहलाव के लिये गढ़ी बातें हैं। वस्तुतः उनसे मानसिक परेशानियाँ तथा स्वास्थ्य और पाचन प्रणाली में शिथिलता ही आती है।

अपने गुण और दोष देखने में जब ईमानदारी और सच्चा दृष्टिकोण नहीं अपनाते, संस्कार परिवर्तन में तभी तक परेशानी रहती है। मनुष्य आत्म-दुर्बल तभी तक रहता है जब तक वह आत्म-विवेचन का सच्चा स्वरूप ग्रहण नहीं करता। झूठे प्रदर्शनों और स्वाध्यायपूर्ण आचरण के कारण ही जीवन में परेशानियाँ आती हैं। सचाई की मस्ती ही अनुभूति है, उसका एक बार जो क्षणिक अनुभूति कर लेता है वह उस जीवन पर्यन्त छोड़ता नहीं। सत्य मनुष्य को ऊँचा उठाता है, साधारण स्थिति से उठाकर परमात्मा के समीप पहुँचा देता है सत् संस्कारों का बल, कुसंस्कारों की अपेक्षा अनन्त गुना अधिक होता है किन्तु कुसंस्कारों में जो क्षणिक सुख और तृप्ति दिखाई देती है उसी के कारण लोग दुष्कर्मों को ओर बढ़ी जल्दी खिंच जाते हैं। अतएव जब कभी ऐसे अनिष्टकारी विचार मस्तिष्क में उठें तब उनसे भागन या शीघ्र-निर्णय का प्रयत्न न करना चाहिये। किसी बुराई से डरने या भागन से वह जीवन का अङ्ग बन जाती है किन्तु जब विचारों में मौलिक परिवर्तन करते हैं और बुराई को गहराई तक छान-बीन करते हैं तो अन्तःकरण की दिव्य-ज्योति के समक्ष सच झूठ की स्वतः अभिव्यक्ति हो जाती है। लोग बुराईयों से सावधान हो जाते हैं। आत्म-निरीक्षण के साथ विचार पद्धति शुभ-संस्कार बढ़ाने का दूसरा उपाय है। इसके लिये यह आवश्यक है कि जो भी व्यवसाय कर पहले उस पर अथ से इति तक विचार कर लें और यदि वह वस्तु उपयोगी दिखाई दे तो उसे प्रयत्नपूर्वक अपने जीवन में धारण करें अन्यथा उसे त्याग दें।



मुद्रक—युग निर्माण प्रेस, गायत्री तपोभूमि, मथुरा।



नैतिक एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिये 'युग-निर्माण योजना' नामक आन्दोलन विगत दस वर्षों से चल रहा है। देश और विदेशों में इसके एक लाख सदस्य, तीन हजार शाखाओं में सङ्गठित होकर शत-सूत्री रचनात्मक कार्यक्रमों में तत्परतापूर्वक संलग्न हैं।

आन्दोलन की विचारधारा का प्रसार करने के लिए 'अखंड - ज्योति' मासिक - पत्रिका और पद्धति का प्रचार करने के लिये 'युग - निर्माण योजना' मासिक - पत्रिका निकलती है।

विचार-क्रांति एवं भावनात्मक नव-निर्माण के कार्य क्रमों पर प्रकाश डालने के लिए २५ पैसे, ४० पैसे सीरीज के आकर्षक एवं सस्ते ट्रैक्ट बड़ी संख्या में प्रकाशित किये जा रहे हैं। अब तक लगभग ३०० ट्रैक्ट छप भी चुके हैं।

प्रचारकों के प्रशिक्षण के लिये गायत्री तपोभूमि में एक वर्षीय शिक्षण-क्रम चलता है, जिसमें जिन्दगी जीने की कला—आत्म-निर्माण, सङ्गीत, भाषण, लेखन, प्रेस-व्यवस्था एवं जन-नेतृत्व की विधिवत् शिक्षा दी जाती है।

प्रकाशक—युग-निर्माण योजना' मथुरा।

मूल्य २५ पैसे

: युगऋषि पं. श्रीराम शर्मा आचार्य- संक्षिप्त परिचय :



ज्यादा जानकारी यहाँ से प्राप्त करें :
http://hindi.awgp.org/about_us

- **विचारक्रान्ति अभियान के प्रणेता** : विचारों को परिष्कृत और ऊँचा उठाने में समर्थ 3000 से भी अधिक पुस्तकों के लेखन के माध्यम से विश्वव्यापी विचार क्रान्ति अभियान की शुरुआत की।
- **वेद, पुराण, उपनिषद के प्रसिद्ध भाष्यकार** : जिन्होंने चारों वेद, 108 उपनिषद, षड दर्शन, 20 स्मृतियाँ एवं 18 पुराणों का युगानुकूल भाष्य किया, साथ ही 19 वीं प्रज्ञा पुराण की रचना भी की।
- **3000 से अधिक पुस्तकों के लेखक** : मनुष्य को देवता समान, घर-परिवार को स्वर्ग, समाज को सभ्य और समग्र विश्वराष्ट्र को श्रेष्ठ बनाने में समर्थ हजारों पुस्तकें लिखकर समयानुकूल समर्थ मार्गदर्शन प्रदान किया।
- **युग-निर्माण योजना के सूत्रधार** : जिन्होंने शतसूत्री युग निर्माण योजना बनाकर नये युग की आधार शिला रखी।
- **वैज्ञानिक-अध्यात्मवाद के प्रणेता** : जिन्होंने नै धर्म और विज्ञान के समन्वय की प्रथम प्रयोगशाला 'ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान' स्थापित कर सिद्ध किया कि "धर्म और विज्ञान विरोधी नहीं, पुरक है"।
- **'२१ वीं सदी : उज्ज्वल भविष्य' के उद्घोषक** : जिन्होंने '२१ वीं सदी : उज्ज्वल भविष्य' का नारा दिया तथा युग विभीषिकाओं से भयग्रस्त मनुष्यता को नये युग के आगमन का संदेश दिया।
- **स्वतंत्रता संग्राम के कर्मठ सेनानी** : जिन्होंने महात्मा गाँधी, मदन मोहन मालवीय, गुरुवर रविन्द्रनाथ टैगोर के साथ राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए संघर्ष किया एवं स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी "श्रीराम मत्त" के रूप में प्रख्यात हुए।
- **गायत्री के सिद्ध साधक** : जिन्होंने गायत्री और यज्ञ को रुढ़ियों और पाखण्ड से मुक्त कर जन-जन की उपासना का आधार तथा सद्बुद्धि एवं सतकर्म जागरण का माध्यम बनाया।
- **तपस्वी** : जिन्होंने गायत्री की कठोरतम साधना कर २४-२४ लाख के २४ महापुरश्चरण २४ वर्षों में सम्पन्न किया। प्रकृति प्रकोप को शांत कर अनिष्टों को टाला, सृजन सम्भावनाओं को साकार किया।
- **अखिल विश्व गायत्री परिवार के जनक** : जिन्होंने अपने जीवनकाल में ही अपने साथ करोड़ों लोगों को आत्मियता के सूत्र में बाँधकर विश्व व्यापी युग निर्माण परिवार - 'गायत्री परिवार' का गठन किया।
- **समाज सुधारक** : जिन्होंने नारी जागरण, व्यसन मुक्ति, आदर्श विवाह, जाति-पाँति प्रथा तथा परंपरागत रुढ़ियों की समाप्ति हेतु अद्भुत प्रयास किए एवं एक आदर्श स्वरूप समाज में प्रस्तुत किया।
- **ऋषि परम्परा के उद्धारक** : जिन्होंने इस युग में महान ऋषियों की महान परंपराओं की पुनर्स्थापना की। लुप्तप्राय संस्कार परंपरा को पुनर्जीवित कर जन-जन को अवगत कराया।
- **अवतारी चेतना** : जिन्होंने "धरती पर स्वर्ग के अवतरण और मनुष्य में देवत्व के जागरण" की अवतारी घोषणा को अपना जीवन लक्ष्य बनाया और चेतना का ऐसा प्रवाह चलाया कि करोड़ों व्यक्ति उस ओर चल पड़े।

गायत्री परिवार जीवन जीने कि कला के, संस्कृति के आदर्श सिद्धांतों के आधार पर परिवार, समाज, राष्ट्र युग निर्माण करने वाले व्यक्तियों का संघ है। **वसुधैवकुटुम्बकम्** की मान्यता के आदर्श का अनुकरण करते हुये हमारी प्राचीन ऋषि परम्परा का विस्तार करने वाला समूह है गायत्री परिवार। एक संत, सुधारक, लेखक, दार्शनिक, आध्यात्मिक मार्गदर्शक और दूरदर्शी युगऋषि पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी द्वारा स्थापित यह मिशन युग के परिवर्तन के लिए एक जन आंदोलन के रूप में उभरा है।

Free Download Complete Work Of Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya, Founder of All World Gayatri Pariwar Books, Magazines, Articles, Stories, Poems, Great Personalities and many more at

www.vicharkrantibooks.org | www.awgp.org